शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

जून : १९५७ ☆ वर्ष तेरहवाँ, ज्येष्ठ ☆ अंक : २

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी वकील

भावना से भवन

जिसे जिसकी रुचि हो, वह बारम्बार उसकी भावना भाता है और भावनानुसार भवन होता है।

भावना से भवन होता है; जैसी भावना वैसा भवन, अर्थात् बारम्बार शुद्ध आत्मस्वभाव की भावना भाने से वैसा भवन-परिणमन हो जाता है... इसलिये जब तक आत्मा की यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव न हो, तब तक सत्समागम से बारम्बार प्रीतिपूर्वक उसका श्रवण-मनन और भावना करते ही रहना चाहिये।—उस भावना से ही भव का नाश होता है।

[—पूज्य गुरुदेव]

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१४६]

एक अंक
चार आना

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ सौराष्ट्र

नया प्रकाशन :—

'श्री जैन तीर्थ पूजापाठ संग्रह'

भक्ति-पूजा और तीर्थयात्रा के समय जिनेन्द्रों की बड़ी-बड़ी पूजा के लिये उपयोगी पुस्तक है जिसमें भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थक्षेत्र तथा अतिशय क्षेत्रों में पूजा के समय जो पूजायें चलती हैं, वह हैं और यात्रियों के लिये आवश्यक सूचनायें तथा तीर्थ क्षेत्रों के विषय में प्रयोजनभूत जानकारी, कहाँ से कहाँ जाना होता है इत्यादि वर्णन होने से अतिउपयोगी है। बहुत अच्छे कागज पर सुन्दर ढंग से छपी है, बढ़िया कपड़े की जिल्द पत्र सं० ३०० मूल्य १-७-० पोस्टेज आदि अलग—

पता :- जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रौढ़ उम्र के गृहस्थों के लिये

जैन दर्शन शिक्षण-वर्ग

इस साल श्रावण शुक्ला ३ सोमवार ता० २९-७-५७ से लेकर भाद्रपद कृष्णा ९ सोमवार ता० १९-८-५७ तक श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट की ओर से सोनगढ़ में जैन दर्शन शिक्षण वर्ग चलेगा। तत्त्वज्ञान का प्रारंभिक अभ्यास करनेवाले जिज्ञासुओं को इस वर्ग का शिक्षण बहुत उपयोगी है। वर्ग में सम्मिलित होने के इच्छुक जैन बन्धुओं को अपने आने की अग्रिम सूचना कर देना चाहिये और निश्चित की हुई अवधि के दरमियान आ जाना चाहिये। इस बार शिक्षण-वर्ग में लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, छहढाला, द्रव्य संग्रह, जैन सिद्धा प्रश्नोत्तरमाला, निमित्त उपादान के दोहे, उनका अध्ययन प्रारम्भ किया जावेगा।

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म

जून : १९५७ ☆ वर्ष तेरहवाँ, ज्येष्ठ ☆ अंक : २

जिनशासन की महिमा

[४]

[श्री भावप्राभृत गाथा ८२ के प्रवचनों से]

लौकिकजन पुण्य को धर्म मानते हैं, किन्तु वह धर्म नहीं है। अरे जीव! क्या तूने पुण्य अनादिकाल में नहीं किये? अनंतबार पुण्य करके स्वर्ग का महान देव हुआ, तथापि तेरा यह भव भ्रमण तो ज्यों का त्यों बना ही रहा!—इसलिये समझ कि धर्म कोई भिन्न वस्तु है—जिसका तूने कभी एक क्षण भी सेवन नहीं किया। जब तक शुद्ध आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में न ले, तब तक इस शरम भरे जन्म-मरण से छुटकारा नहीं होता।

देखो, यह चैतन्यानन्द की मस्ती में झूलने और वन में वास करनेवाले वीतरागी संतों की वाणी है। जैनधर्म में तो भगवान ने ऐसा कहा है कि जो पुण्य को धर्म मानता है, वह मात्र भोगों की ही इच्छा रखता है। अहो! जिन्हें धर्म की भावना हो... मोक्ष की भावना हो, वे जीव आत्मा के स्वभाव का निरीक्षण करो.. आत्मा में अंतर अवलोकन करो; वही मुक्ति देनेवाला है। आत्मा के अंतर अवलोकन बिना भव का अंत नहीं आता। अरे! मनुष्य भव पाकर यदि आत्मा में भव के अंत की भनक न उठी तो जीवन किस काम का?

जिनशासन में धर्म क्या है, अथवा किस भाव से जिनशासन की महिमा है–वह बात चल रही है। आत्मा ज्ञान–आनन्द स्वभाव की मूर्ति है; उसकी श्रद्धा–ज्ञान और रमणतारूप शुद्धभाव, वह धर्म है, और वह धर्म ग्रहण करने के पश्चात् भवभ्रमण नहीं रहता; यही जिनशासन की महिमा है। इसलिये कहा है कि—जो भव का मंथन कर डाले—नाश कर डाले – ऐसा जैनधर्म है; उसे हे जीव!

तू भा! भव का नाश करने के लिये तू ऐसे धर्म की भावना कर! देखो, यह भव रोग की औषधि!

भाई! तेरा आत्मा सदैव ज्ञान-दर्शन-आनन्द से परिपूर्ण है, किन्तु अनादि से एक क्षण भी उसमें तूने दृष्टि नहीं की। बाह्य दृष्टि से देहादि की क्रिया का अभिमान करके उसी में धर्म मान लिया है। आत्मा के भान द्वारा सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव प्रगट किये बिना शुभ-अशुभभाव द्वारा चार गति के भव में अवतार धारण कर रहा है; किन्तु उसके द्वारा जन्म-मरण का अंत नहीं होता। इसलिये यहाँ कहते हैं कि जो भावी-भव का मंथन कर डाले अर्थात् जिससे भविष्य में भव न मिले किन्तु मोक्ष प्राप्त हो—ऐसा आत्मा का भाव, वह धर्म है और ऐसा भाव, वह शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। पुण्य से स्वर्ग-मनुष्य का भव मिले या पाप से नरक-तिर्यंच का भव मिले, वह कहीं धर्म नहीं है, उसमें दुःख का अंत नहीं है। जिससे चारों गति के दुःख का अंत आ जाये - ऐसा शुद्धवीतरागभाव, वह धर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य भाव को या अन्य प्रकार से धर्म कहना, वह तो नाममात्र है, उससे कहीं भव का नाश नहीं होता। इसलिये भव का नाश करनेवाले ऐसे शुद्ध सम्यग्दर्शनादि भावों की जिसमें प्राप्ति होती है, वह जिनधर्म ही उत्तम है।—ऐसा जानकर हे भव्य! तू उसे अंगीकार कर। भव का नाश करने के लिये तू ऐसे धर्म की रुचि कर और राग की रुचि छोड़। इस वीतरागी धर्म की भावना से तेरे भव का नाश होगा, इसलिये ऐसे धर्म की भावना कर!—ऐसा संतों का उपदेश है।

देखो, यह जैनधर्म का स्वरूप और उसे उत्तम कहने का कारण! भव का नाश कर डाले, वही जैनधर्म और उसी से उसकी उत्तमता। जैनधर्म की अर्थात् आत्मा के ज्ञानानन्दस्वभाव की भावना कर, उसकी भावना द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव प्रगट होगा तथा भव का नाश होकर सिद्धपद प्राप्त होगा।

आत्मा क्या वस्तु है, वह जाने बिना धर्म कहाँ से आयेगा? यह देह तो अचेतन जड़ परमाणुओं का पुतला है; ऐसी देह तो अनंतबार आई और छूट गई, उसमें कहीं आत्मा का धर्म नहीं है; तथा राग-द्वेष-मोहादि भाव हों, वह भी धर्म नहीं है। पुण्य का शुभभाव हो, उसे सामान्य लोग (जिन्हें इस गाथा के भावार्थ में 'लौकिक जन' कहा है वे) धर्म कहते हैं किन्तु वह कहीं धर्म नहीं है, वह तो राग है; उससे कहीं भव का अन्त नहीं आता। जैनधर्म तो वीतरागभावरूप है और भव के नाश का कारण है। अहो, अनंत शरीर संयोगरूप से आये और चले गये, अनेक प्रकार के रागादि आये और छूट गये, तथापि यह आत्मा तो वही का वही है; तो फिर देह तथा राग से पार उसका क्या

स्वरूप है–उसे पहिचानना चाहिये। जब तक ज्ञानस्वभावी तत्त्व को अनुभव में न ले, तब तक इस शरम भरे जन्म–मरण से छुटकारा नहीं होता। इसलिये हे भाई! अपने शुद्ध आत्मा के श्रद्धा–ज्ञान–एकाग्रतारूप जिनधर्म को अंगीकार कर, जिससे तेरे इस जन्म–मरण का अंत आये।

यह शरीर–वाणी–पैसादि तो जड़ हैं, वे तो अचेतन भाव से भरपूर हैं तथा चैतन्यस्वरूपी जीव से अत्यन्त भिन्न हैं, इसलिये उनकी तो यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो जीव के भाव की बात है; जीव के किस भाव से धर्म होता है, वह यहाँ बतलाते हैं। जीव के भाव तीन प्रकार के हैं—(१) शुद्ध भाव (२) शुभ भाव और (३) अशुभ भाव; उनमें शुभ तथा अशुभ इन दोनों से रहित जो निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप शुद्धभाव है, वही धर्म है और उसी के द्वारा जैनशासन की शोभा है; क्योंकि इस सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप शुद्धभाव की प्राप्ति जैनशासन में ही होती है और उसी से भव का नाश होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप वीतरागी जिनधर्म की आराधना के बिना शुभ–अशुभभाव करके जीव अनंतकाल से चार गतियों में भटका है; पुण्य द्वारा स्वर्ग के भव भी अनन्तबार किये, तथापि अभी भव का अंत नहीं आया, इसलिये हे जीव! तू समझ कि पुण्य वह धर्म नहीं है, तथा वह करते–करते भव का अन्त नहीं आता। लौकिकजन पुण्य को धर्म मानते हैं किन्तु वह धर्म नहीं है। लौकिक जन अर्थात् मिथ्यादृष्टि। पुण्य से धर्म होता है—ऐसा माननेवाला वास्तव में जैनमती है ही नहीं किंतु अन्यमती जैसा लौकिकजन है। मोह–राग–द्वेष तो भावी भव का कारण है; राग की भावना तो भव का कारण है; इसलिये हे भव्य! तू उसकी भावना छोड़, रागरहित ऐसे चैतन्यस्वभाव की भावना भा।

पाप भिन्न वस्तु है, पुण्य भिन्न वस्तु है और धर्म वह तीसरी वस्तु है। देहादि जड़ की क्रिया तो जीव से अत्यन्त भिन्न है; इसलिये उसकी तो बात नहीं है। हिंसादि पापभावों को तो लोग सामान्ययप से अधर्म मानते ही हैं, किंतु लोगों का अधिकांश पुण्य को ही धर्म मानकर मिथ्यात्व में अटक गया है, इसलिये यहाँ यह बात स्पष्ट समझाते हैं कि अरे जीव! क्या तूने अनादिकाल में पुण्य नहीं किये हैं? भाई! पुण्य भी तू अनंतबार कर चुका है और उसके फल में स्वर्ग का महान देव भी हो चुका है, तथापि तेरा यह भवभ्रमण तो ज्यों का त्यों बना ही रहा! इसलिये समझ कि धर्म कोई भिन्न ही वस्तु है कि जिसका तूने कभी एक क्षण भी सेवन नहीं किया। पुण्य–पाप दोनों से पार तेरा ज्ञानानन्दस्वभाव है, उस स्वभाव की ओर ढलकर उसकी रुचि कर, उसकी दृष्टि कर, उसकी महिमा कर और उसी की भावना कर। पुण्य–पाप दोनों तेरे आत्मधर्म से भिन्न हैं; इसलिये उनकी

रुचि छोड़। जिसप्रकार पाप, वह धर्म नहीं है; उसी प्रकार पुण्य भी धर्म नहीं है; धर्म तो पुण्य-पाप रहित ज्ञानानन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप वीतरागभाव ही है; उसी में भव का नाश करने की शक्ति है। एक क्षण भी ऐसे धर्म का सेवन अनंतभव का नाश कर डालता है। किन्तु ऐसे यथार्थ धर्म की पहिचान या रुचि तूने पूर्व अनंतकाल में कभी नहीं की, इसलिये हे भाई! अब ऐसे शुद्धधर्म की भावना भा। जिनशासन में तो धर्म का ऐसा ही स्वरूप कहा है और ऐसे धर्म की भावना से तेरे भवभ्रमण का अन्त आयेगा।

अभी तो जो पाप में ही डूबे हैं; कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानते हैं, उनकी तो बात ही क्या करें? किन्तु चैतन्य के यथार्थ भान बिना जो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, व्यवहाररूप व्रत-पूजादि पुण्यभाव करते हैं, वे भी धर्मी नहीं हैं। जो पुण्य को धर्म मानते हैं, वे मिथ्यादृष्टि-लौकिकजन जैसे ही हैं। मिथ्यात्वादि मोहभाव तथा राग-द्वेषरूप क्षोभ से रहित, शुद्ध ज्ञानानन्द-स्वरूप को रुचि, ज्ञान तथा एकाग्रतारूप वीतरागभाव, वह धर्म है। धर्म का ऐसा स्वरूप पहिचान-कर पहले उसकी रुचि करो और उससे विपरीत मार्ग की रुचि छोड़ो। ऐसी अंतर्दृष्टि होने के पश्चात् साधक को अमुक अंश तक राग तो होता है, किंतु उस राग को वे धर्म नहीं मानते; राग को तो बंध का ही कारण समझते हैं और शुद्ध चिदानन्द तत्त्व के आश्रय से शुद्धभाव को ही मोक्ष का कारण जानकर उसकी आराधना करते हैं। दृष्टि की पूरी दिशा ही बदल गई है।

जिसे संसार की आवश्यकता है, संसार की रुचि है, पुण्य की तथा स्वर्ग की बात मीठी लगती है, वह जीव तो धर्म की रुचिवाला ही नहीं है, वह धर्म का पात्र नहीं है। भाई! तुझे भावना काहे की है? धर्म की भावना है न?—तो हम कहते हैं कि धर्म तो वीतरागभाव में ही है; अपने आत्मस्वभाव के अंतर अवलोकन से जो शुद्ध-वीतरागभाव हो, वही धर्म है और राग, वह धर्म नहीं है। मैं तो शुद्ध ज्ञान-आनन्द का भण्डार हूँ; कोई भी परद्रव्य और कोई भी राग मुझे किंचित् हितकर या सहायक नहीं है-ऐसी रुचि तो कर। रुचि की दिशा सच्ची होगी तो आगे चलकर भव का अन्त आ जायेगा। किंतु जिसकी रुचि ही मिथ्या होगी, संसार के कारण को ही मोक्ष का कारण मानकर उसका सेवन करता होगा—उसका उद्धार कहाँ से होगा?

अरे जीव! तेरा आत्मा तेरे पास ही है और उसी के आधार से तेरा धर्म है; अंतर्मुख होकर एकबार उसे प्रतीति में ले! जिसप्रकार रत्नों में वज्ररत्न सर्वश्रेष्ठ है, उसी प्रकार जगत के समस्त पदार्थों में यह चैतन्यस्वभावी रत्न सर्वश्रेष्ठ है, और इस चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप

जो बोधि, उसकी प्राप्ति जैनधर्म में ही है; इसलिये जैनधर्म ही जगत में उत्तम है। जगत में यह वीतरागभावरूप जैनधर्म ही एक सत्यधर्म है; यह एक वीतरागी जैनधर्म ही मोक्ष की प्राप्ति करानेवाला है। दूसरे धर्म तो नाममात्र ही धर्म हैं–मोक्ष की प्राप्ति उनमें नहीं है अर्थात् वे वास्तव में धर्म हैं ही नहीं। जिसप्रकार कड़वे चिरायते की थैली पर 'मिसरी' नाम लिख दे, तो वह नाममात्र ही है, उससे कहीं चिरायते की कड़वाहट दूर होकर वह मीठा नहीं हो जाता; उसी प्रकार अन्य धर्मों को या रागादि को धर्म कहना भी नाममात्र ही है, उससे कहीं भव का नाश नहीं होता। आत्मा का शुद्ध वीतरागभाव ही वास्तव में धर्म है; इसके सिवा शुभराग भी अन्य धर्म है; उस राग को धर्म कहना तो नाममात्र है। राग धर्म नहीं है किन्तु धर्म से अन्य है; इसलिये राग को धर्म माननेवाले भी अन्यमती हैं अर्थात् लौकिकजन हैं–मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिये परीक्षा करके निर्णय करना चाहिये कि मोक्ष के कारणभूत धर्म कौन सा है।

मोक्ष अर्थात् आत्मा की पूर्ण आनन्दमय शुद्धवीतरागी दशा; उसका कारण भी वीतरागी शुद्धभाव ही है; रागादि अशुद्धभाव, मोक्ष का कारण नहीं है किंतु संसार का कारण है। संसार अर्थात् आत्मा की विकारी दशा; मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप अशुद्धभाव ही संसार है। बाह्य परवस्तुओं में कहीं आत्मा का संसार नहीं है; इसलिये बाह्य में घरबार-स्त्री-व्यापार आदि का संयोग छूटने मात्र से कहीं आत्मा में से संसार नहीं छूट जाता, किंतु अंतरंग में शुद्ध सम्यग्दर्शनादि भाव द्वारा मिथ्यात्वादि अशुद्ध भावों का अभाव करने से ही संसार का अभाव होकर मोक्ष दशा होती है। इस प्रकार आत्मा का संसार, मोक्षमार्ग—वह सब आत्मा में ही है और उसका कारण भी आत्मा में है।

बाह्य में यह जो शरीर-घरबार आदि दिखाई देते हैं, वही संसार हो तो, मृत्यु के समय आत्मा इन शरीरादि को छोड़कर अकेला चला जाता है—इन्हें साथ नहीं ले जाता; इसलिये शरीर छूटने पर उसका संसार भी छूट जाना चाहिये और मोक्ष हो जाना चाहिये; किंतु ऐसा तो नहीं होता। मृत्यु के समय जब जीव, शरीर छोड़कर जाता है, उससमय भी अपना संसार तो साथ ही ले जाता है। कौनसा संसार ?—कहते हैं कि अज्ञान और रागद्वेषरूपी भाव, वह संसार है और उसे जीव साथ ही ले जाता है। यदि वह अज्ञान और रागद्वेष के भाव छोड़े तो संसार छूट जाये। संसार क्या है और मोक्ष क्या है—उसका भी जीव को भान नहीं है, सब बाह्य में ही मान लिया है।

यहाँ तो संत कहते हैं कि पुण्य, वह संसार है, वह धर्म नहीं है और अज्ञानी ऐसा मानते हैं कि पुण्य, वह धर्म है, तथा वह करते-करते मोक्ष हो जायेगा। देखो, कितना महान अंतर है ? अहो!

आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी वीतराग धर्म ही संसार के नाश का कारण है, वही जैनधर्म है; उसे चूककर बेचारे मूढ़ जीव, राग में और पुण्य में ही धर्म मानकर वहाँ रुक गये हैं; किन्तु पुण्य की मिठास तो संसार की ही उत्पत्ति का कारण है। 'पुण्य द्वारा जैनधर्म की श्रेष्ठता है, अर्थात् राग द्वारा-विकार द्वारा जैनधर्म की श्रेष्ठता है'—ऐसा मूढ़ अज्ञानी जीव मानते हैं; उन्हें आचार्यदेव ने लौकिक जन कहा है। इस ८३ वीं गाथा में आचार्यदेव ने स्पष्टीकरण किया है कि जिनशासन में तो भगवान जिनेन्द्रदेव ने पूजा-व्रतादि के शुभभाव को पुण्य कहा है, उसे धर्म नहीं कहा; धर्म तो आत्मा के मोह-क्षोभरहित परिणाम को अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध वीतरागभाव को ही कहा है। चैतन्यानन्द की मस्ती में झूलनेवाले और वन में रहनेवाले वीतरागी संत की यह वाणी है।

जैनधर्म की महत्ता यह है कि मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धभाव की प्राप्ति उसी में होती है; मोक्ष का मार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जैनशासन में ही यथार्थ हैं... जैनशासन में सर्वज्ञ भगवान कथित चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र से ही मोक्ष के कारणरूप शुद्धभाव होता है और उसी से जैनधर्म की श्रेष्ठता है। इसलिये हे जीव! ऐसे शुद्धभाव द्वारा ही जैनधर्म की महिमा जानकर तू उसे अंगीकार कर, और राग को-पुण्य को धर्म न मान, तथा उससे जैनधर्म की महत्ता न मान। जैनधर्म में तो भगवान ने कहा है कि-जो पुण्य को धर्म मानता है, वह मात्र भोग की ही इच्छा करता है, क्योंकि पुण्य के फल में तो स्वर्गादि के भोग की प्राप्ति होती है; इसलिये जिसे पुण्य की भावना है, उसे भोग की अर्थात् संसार की ही भावना है किंतु मोक्ष की भावना नहीं है। अहो! जिन्हें धर्म की भावना हो, मोक्ष की भावना हो, वे जीव आत्मा के स्वभाव का निरीक्षण करें... आत्मा में अंतर अवलोकन करें... वही मोक्षदाता है। आत्मा के अंतर अवलोकन बिना भव का अंत नहीं आता। मोक्षदशा आत्मा में से आती है, इसलिये आत्मा की शरण लो! राग में से मोक्षदशा नहीं आती, इसलिये राग की शरण छोड़ो! राग की शरण छोड़कर अंतर में वीतरागी चैतन्यतत्त्व की शरण लेना-उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता करना-वह धर्म है; ऐसे धर्म से ही भव का अंत आता है; इसके सिवा अन्य किसी प्रकार भव का अंत नहीं आता। अज्ञानी भले ही पुण्य करे, किन्तु उससे किंचित् धर्म नहीं होता और भव का अंत नहीं आता। यह मनुष्य-अवतार पाकर यदि आत्मा में भव के अन्त की भनक जागृत न हुई तो जीवन किस काम का? जिसने भव से छूटने का उपाय नहीं किया, उसके और कौए के जीवन में क्या अंतर? इसलिये भाई! अब इस भव भ्रमण से आत्मा का छुटकारा कैसे हो, उसका सत्समागम से उपाय कर। सत्समागम से चिदानंदस्वभाव

का अंतरंग उल्लासपूर्वक श्रवण करके उसकी प्रतीति करते ही तेरे आत्मा में भव-अन्त की भनक आ जायेगी।

मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि हो, उसे जो शुभराग है, वह तो बन्ध का ही कारण है। हाँ, सम्यक्त्वी को उस राग के समय भी राग से पार चिदानन्दस्वभाव की दृष्टि तथा अंशतः वीतरागता वर्तती है, वह धर्म है; तथा जो राग शेष रहा है, उसे वे धर्म नहीं मानते। मिथ्यादृष्टि को तो राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व का लक्ष ही नहीं है, वह तो शुभराग को ही धर्म मानता है, इसलिये उसे तो धर्म का एक अंश भी नहीं है। अज्ञानी या ज्ञानी को राग का अंश तो बन्ध का ही कारण है और सम्यग्दर्शनादि वीतरागभाव, वह मोक्ष का ही कारण है। जो बन्ध का कारण हो, उससे धर्म नहीं होता, और जो धर्म हो, उससे बन्धन नहीं होता। धर्म कहो या मोक्ष का कारण कहो;—ऐसे धर्म की जिसे रुचि नहीं है और शुभराग को ही धर्म मानकर रुचिपूर्वक उसका सेवन करता है, वह जीव कदाचित् पुण्य करके स्वर्ग में जायेगा तो वहाँ भी पुण्य की मिठास के कारण उस पुण्य के फलरूप भोग में लीन होकर एकेन्द्रियादि में चला जावेगा और अनंत-संसार में परिभ्रमण करेगा। धर्म का फल तो मोक्ष है, धर्मी को भी बीच में पुण्य तो उच्च प्रकार के आते हैं, किन्तु उसे पुण्य की या उसके फल की किंचित् रुचि नहीं है; इसलिये वह पुण्य की दीर्घ स्थिति को तोड़कर स्वभाव में लीनता द्वारा अल्पकाल में वीतराग होकर मोक्ष में चला जायेगा, और पुण्य को धर्म माननेवाला जीव विपरीत मान्यता के बल से पुण्य की लम्बी स्थिति को तोड़कर निगोद में चला जायेगा; क्योंकि विपरीत मान्यता का फल निगोद है।—इसलिये ऐसा समझो कि पुण्य, वह धर्म नहीं है। जो भवभ्रमण से भयभीत हों, वे राग से धर्म मानना छोड़ देवें और रागरहित चिदानन्दस्वभाव की आराधना करें! ज्ञानियों को रागरहित चिदानन्दस्वभाव की भावना से संसार कटकर अल्पकाल में मोक्ष हो जाता है, और मिथ्यादृष्टि जीव, राग की रुचि तथा चैतन्यस्वभाव का अनादर करके नरक-निगोद में परिभ्रमण करते हैं।

देखो, अभी यह प्रारम्भिक भूमिका की बात है। पहले धर्म की भूमिका तो स्पष्ट करना चाहिये न!—कि कौन-सा भाव धर्म है और कौन-सा अधर्म? अथवा कौन-सा भाव मोक्ष का कारण है और कौन-सा संसार का?—उसके भान बिना संसार के कारण को धर्म माने-पुण्य को धर्म माने तो उसे धर्म की भूमिका ही स्पष्ट नहीं है। धर्म क्या है—उसके भान बिना धर्म करेगा कहाँ से? वह तो पुण्यादि को धर्म मानकर, धर्म के नाम पर अधर्म का ही सेवन करके संसार में

भटकेगा। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीवो! तुम जिनशासन में कहे हुए ऐसे वीतरागभावरूप धर्म को जानकर भव के अभाव के लिये उसी की भावना करो। ऐसे जिनधर्म को ही उत्तम एवं हितकारी जानकर उसका सेवन करो तथा राग की रुचि छोड़ो, पुण्य की रुचि छोड़ो... जिससे तुम्हारे भव का अंत आये और मोक्ष हो जाये।

मोक्षदाता

अहो! जिन्हें धर्म की भावना हो... मोक्ष की भावना हो, वे जीव आत्मा के स्वभाव का निरीक्षण करो... आत्मा का अन्तर अवलोकन करो... वही मोक्षदाता है।

[—पू० गुरुदेव]

पूज्य गुरुदेव का मंगल-प्रवास

अत्यन्त उल्लास पूर्वक शाश्वत तीर्थों की यात्रा

[लेखांक-३]

परम पूज्य गुरुदेव पवित्र तीर्थों की यात्रा और जैन धर्म की महान् प्रभावना करते हुए संघ सहित विहार कर रहे हैं। महान् तीर्थ धामों की यात्रा से पूज्य गुरुदेव अत्यंत प्रसन्न हुए हैं; उनके मुख से बारम्बार भक्ति पूर्ण उद्‌गार निकले हैं।

बनारस

अनन्त तीर्थंकरों के जन्म से पावन शाश्वती अयोध्यानगरी की यात्रा करके, ता० २२-२-५७ के दिन पूज्य गुरुदेव बनारस पधारे। बनारस श्री पार्श्वनाथ, सुपार्श्वनाथ आदि भगवन्तों का जन्मधाम है। वहाँ जैनों के सिर्फ २५-३० घर हैं। यहाँ पहुँचते ही पं० कैलाशचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री, पं० फूलचंदजी सिद्धान्तशास्त्री, प्रोफेसर खुशालचंद्रजी आदि विद्वानों ने प्रेमपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया। संघ के ठहरने की उत्तम व्यवस्था की गई थी।

सिंहपुरी-चन्द्रपुरी

दोपहर के समय गुरुदेव संघ सहित सिंहपुरी-चन्द्रपुरी की यात्रा को पधारे। सिंहपुरी बनारस से आठ मील दूर है; वह श्रेयांसनाथ भगवान की जन्मभूमि है। चन्द्रपुरी चन्द्रनाथ भगवान की जन्मभूमि है; वह चौदह मील दूर गंगानदी के किनारे स्थित है। चन्द्रपुरी—जन्म धाम का सुन्दर दृश्य देखकर हृदय भक्ति और प्रसन्नता से छलक उठता है... वहाँ चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमाजी तथा चरण कमल विराजमान हैं। चन्द्रपुरी में दर्शन-पूजन के पश्चात् सब सिंहपुरी आये। श्रेयांसनाथ भगवान के जन्मधाम में प्रवेश करते ही हृदय शांतिरस से भर उठता है। अहा! धन्य है उस शांतिधाम को!! बौद्धों के सारनाथ-स्तंभ के सामने ही श्रेयांसनाथ भगवान का मन्दिर है। वहाँ गुरुदेव के साथ सबने अर्घ्य चढ़ाकर भक्ति की... पू० बहिनश्री बहिन ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक भगवान के जन्म की बधाई गवाई थी। दर्शन के बाद शाम को बनारस लौट आये।

रत्न-प्रतिमा

ता० २३ के प्रात:काल पू० गुरुदेव रत्न-प्रतिमा के दर्शन करने पधारे। पार्श्वनाथ भगवान की भव्य रत्न-प्रतिमा को गुरुदेव ने वंदना करके भाव सहित अर्घ्य चढ़ाया... तत्पश्चात् दूसरे मन्दिरों में गये।

टाउनहाल में गुरुदेव का प्रवचन रखा गया था। प्रवचन तथा रात्रिचर्चा में विद्वान और जनता अच्छी संख्या में उपस्थित रहकर प्रवचन का लाभ उठाते थे।

पार्श्वनाथ प्रभु के जन्मधाम में

प्रवचन के बाद सारा संघ भेलूपुर में पार्श्वनाथ भगवान की जन्मभूमि के दर्शनार्थ गया। वहाँ तीन मन्दिर हैं; जिनमें दो दिगम्बर और एक श्वेताम्बर-दिगम्बर का सम्मिलित है। दोनों की प्रतिमाएँ अलग-अलग विराजमान हैं। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान की भक्ति तथा धुन हुई थी।

गंगा किनारे-सुपार्श्व तथा स्याद्वाद महाविद्यालय में...

बनारस में गंगा के किनारे दि० जैन स्याद्वाद महाविद्यालय स्थित है। वहाँ के आमंत्रण पर पू० गुरुदेव संघ सहित वहाँ पधारे। अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने प्रेम भरा स्वागत किया और गुरुदेव की छाया में विद्यालय का वार्षिक सम्मेलन हुआ... वहाँ दो जिन मन्दिर हैं तथा सुपार्श्वनाथ भगवान की जन्मभूमि भी वहीं है। यह स्थान गंगा के किनारे है। गंगा का जल मन्दिर से सटकर इस तरह बह रहा है मानों भगवान का अभिषेक करता हो। उस रमणीक स्थान पर बहिनश्री बहिन ने

उमंग पूर्वक भक्ति कराई थी। भक्ति के समय पू० गुरुदेव भी विशेष आनंदित थे... संतों के साथ उस जन्मधाम के दर्शन से सब भक्तों को अत्यन्त आनन्द हुआ था। स्याद्वाद विद्यालय में गुरुदेव का सुन्दर प्रवचन हुआ... गंगा किनारे गुरुदेव ने अध्यात्म गंगा प्रवाहित की।

सन्मति-निकेतन में

उसके बाद गुरुदेव 'सन्मति-निकेतन' (विद्यालय) में पधारे। वहाँ प्रो० खुशालचन्दजी तथा विद्यार्थियों ने स्नेहभरा सन्मान किया। मंगल प्रवचन के पश्चात् गुरुदेव सेठ हुकमचनदजी के जिन मन्दिर में दर्शन करने गये। मन्दिर में महावीर भगवान की विशाल भाववाही प्रतिमा विराजमान हैं।

डालमियानगर में भव्य स्वागत

तारीख २४ के दोपहर को गुरुदेव ने संघ सहित डालमियानगर की ओर प्रस्थान किया... यात्रा के समय पूज्य गुरुदेव के साथ वन के मार्ग पर चलते हुए भक्तजनों को विशेष हर्ष होता था।

करीब चार बजे शाम को संघ ने डालमियानगर में प्रवेश किया... वहाँ ठहरने आदि की सारी व्यवस्था श्री साहू शांतिप्रसादजी की ओर से बड़े अच्छे ढ़ंग से की गई थी। वहाँ के जिन मन्दिर में महावीर भगवान की भाववाही प्रतिमा विराजमान हैं। रात्रि को मन्दिर में उल्लासपूर्वक भक्ति हुई थी।

ता० २५ को प्रातःकाल एक स्वागत-समारोह हुआ था, जिसमें अनेक विद्वानों ने भाषण और काव्यों द्वारा गुरुदेव का अभिनन्दन किया था। पं० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय ने गुरुदेव को मानपत्र अर्पण किया। पश्चात् श्रीमती रमारानी तथा साहूजी ने भक्तिपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पण की थी। साहूजी ने कहा था-'हमारा परम सौभाग्य है कि स्वामीजी संघ सहित हमारे यहाँ पधारे हैं और हमें उनके स्वागत का अवसर प्राप्त हुआ है। यह श्रद्धांजलि अर्पित करके मैं पूज्य स्वामीजी तथा संघ का स्वागत करता हूँ।' उसके बाद डालमियानगर की जैन समाज तथा समस्त जनता की ओर से गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पण की थी, और श्लोकवार्तिक आदि शास्त्र भेंट दिये गये थे।

प्रवचन के बाद साहूजी अपने औद्योगिक कारखाने (सीमेनट, सुगर, पेपर मिल्स आदि) दिखाने के लिये ले गये थे। संघ के भोजनादि की सुन्दर व्यवस्था की थी। गुरुदेव के प्रति उन्होंने अत्यन्त प्रेम और भक्तिभाव प्रदर्शित किया था।

संघ दोपहर को डालमियानगर से चलकर रात्रि को आरा पहुँचा।

आरा (जैनपुरी) में जिनेन्द्र दर्शन

पूज्य गुरुदेव ता० २६ के प्रात:काल आरा पधारे। संघ ने और आरा के दि० जैन समाज ने उल्लासपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया। आरा को जैनपुरी कहा जाता है। वहाँ करीब ४० जिनमंदिर हैं जिनके दर्शन किये... भक्तजन भी आनन्दपूर्वक भक्ति की धुन गाते-गाते गुरुदेव के साथ दर्शन कर रहे थे... उस समय यात्रा का वातावरण देखते ही बनता था! भक्त गा रहे थे:—

हिलमिल कर सब भक्तो चालो...
गुरुवर जी के साथ में,
जिनमन्दिर के दर्शन करिये....
गुरुजी के साथ में।

नन्दीश्वर मन्दिर के दर्शन

आगे चलने पर नंदीश्वर मन्दिर आया। उसमें नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनमन्दिरों की बड़ी सुन्दर रचना है। पूज्य गुरुदेव तथा सब भक्तजन दर्शन करके प्रसन्न हुए। गुरुदेव कहने लगे—'देखो यह नन्दीश्वर की रचना, ध्यान पूर्वक देख लेना... सोनगढ़ में करना हो तो कम आयेगी।' नन्दीश्वर की रचना देखते ही भक्त गाने लगे थे—

हिलमिलकर सब भक्तो चालो....
नंदीश्वर के धाम में....

—गुरुदेव उस नन्दीश्वर धाम को अवलोकन करते हुए उसकी प्रदक्षिणा कर रहे थे और भक्तजन धुन गाते-गाते उनके पीछे चल रहे थे। प्रदक्षिणा के बाद सबने आनन्द पूर्वक दर्शन करके अर्घ्य चढ़ाया। एक और जिन मन्दिर में श्री सम्मेदशिखर धाम की सुन्दर रचना थी, वहाँ भी दर्शन किये। इसप्रकार अनेक जिन मन्दिरों के दर्शन करके गुरुदेव ब्र० चन्दाबाई जैन बालाविश्राम में पधारे। वहीं गुरुदेव को ठहराया गया था।

दोपहर को शांतिनाथ भगवान के विशाल मन्दिर में पू० गुरुदेव का प्रवचन हुआ। प्रवचन के समय जनता अच्छी संख्या में उपस्थित थी।

बाहुबलि भगवान

बालाविश्राम में श्री बाहुबलि भगवान की अत्यन्त मनोज्ञ प्रतिमा (करीब १५ फुट ऊँची) है। उसी के सन्मुख एक भव्य मानस्तंभ है। उस मानस्तंभ में नीचे, मध्यभाग में तथा ऊपर-तीन

जगह प्रतिमाजी विराजमान हैं। एक ओर बाहुबलि भगवान और उन्हीं के सन्मुख मानस्तंभ में श्री आदिनाथ भगवान - इस प्रकार पिता-पुत्र एक-दूसरे के समक्ष शोभा दे रहे हैं। प्रवचन के बाद गुरुदेव ने बाहुबलि भगवान की भक्ति की थी—

धन्य मुनीश्वर आतमहित में छोड़ दिया परिवार...
कि तुमने छोड़ सब घरबार...
धन छोड़ा वैभव सब छोड़ा,
समझा जगत असार...
कि तुमने छोड़ दिया संसार...

— इत्यादि वैराग्यपूर्ण भक्ति हुई थी। बाहुबलि भगवान की मुद्रा अत्यन्त भाववाही है... दर्शन करते हुए उस मुद्रा को बारम्बार देखने का मन होता है। भक्तजनों ने बाहुबलि भगवान का मस्तकाभिषेक भी बड़े भक्ति भाव से किया था।

बालाविश्राम में स्वागत-समारोह

सायंकाल बालाविश्राम की बहिनों की ओर से पू० गुरुदेव का स्वागत किया गया था। उसमें ब्र० पं० चंदाबाई तथा आश्रम की बहिनें उपस्थित थीं। प्रारम्भ में आश्रम की बालाओं ने स्वागत गीत गाये और फिर पुष्पहार अर्पण किया... ब्र० चन्दाबाई ने भी गुरुदेव के प्रति अत्यन्त भक्तिभाव प्रदर्शित किया था। गुरुदेव के आगमन से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। गुरुदेव ने भी सोनगढ़ के ब्रह्मचर्याश्रम सम्बन्धी कुछ परिचय दिया था... गुरुदेव के मुख से वह परिचय सुनकर ब्र० चन्दाबाई आदि प्रसन्न हुए थे। उन्होंने बहिनश्री बहिन का भी खूब सम्मान किया था।

सायंकाल गुरुदेव ने बालाविश्राम के सामनेवाले दो जिन मन्दिरों के दर्शन किये थे।

अभिनन्दन-पत्र

रात्रि को चर्चा के बाद पू० गुरुदेव को आरा के संघ की ओर से अभिनंदन-पत्र अर्पण किया गया था.... और सारी जनता ने गुरुदेव के प्रति हार्दिक स्नेह व्यक्त किया था। अभिनन्दन-पत्र अर्पण करते समय सेठ सुबोधकुमारजी ने कहा था 'हमारा परम सौभाग्य है कि पू० स्वामीजी हमारे यहाँ पधारे हैं। स्वामीजी का प्रवचन सुनने से आत्मा का विषय-जो हमें जटिल मालूम होता था।-सुगम हो गया है। स्वामीजी के आगमन के बाद हमें खबर भी नहीं पड़ी कि समय कब बीत गया! मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि स्वामीजी यहाँ अधिक समय रहें।'

पटना-सुदर्शन मोक्षधाम

ता० २७ के प्रात:काल बाहुबलि भगवान के दर्शन करके गुरुदेव ने पटना की ओर विहार किया; अहमदाबाद-बम्बई से स्पेशल ट्रेन द्वारा आनेवाला संघ भी पटना आ पहुँचा था। गुलजारी बाग जिन मन्दिर में दर्शन करके गुरुदेव ने हीरा-माणिकों की अर्घ्य चढ़ाया। फिर कुछ दूर श्री सुदर्शन (सेठ) मुनिराज की मोक्षभूमि के दर्शन करने पधारे। सब भक्तजन भी भक्ति गाते-गाते गुरुदेव के साथ चल रहे थे। निर्वाण भूमि में श्री सुदर्शन भगवान के चरण कमल हैं; वहाँ जाकर उन दृढ़ ब्रह्मचारी वैराग्यवंत संत के चरणों की पूजा की... पूजा के पश्चात् भक्ति हुई थी।

आओ आओ जी... हाँ हाँ...
आओ आओ जी... जैन जग सारे,
सुदर्शन मुनि मोक्ष गये....
—इत्यादि स्तवन गाये गये थे।

राजगृही धाम में

दोपहर को पटना से रवाना होकर संघ राजगृही पहुँचा। गुरुदेव सायंकाल पाँच बजे राजगृही पधारे और भक्तों ने उमंग पूर्वक स्वागत किया। रात्रि को जिनमन्दिर में उल्लास पूर्ण भक्ति हुई थी; उसमें गुरुदेव ने समवशरण का स्तवन गवाया था।

पंचशैलपुर की यात्रा को

ता० २८ (फाल्गुन कृष्णा १४) के प्रात:काल गुरुदेव संघ सहित पंचशैलपुर तीर्थ की यात्रा को पधारे। इस पंचशैलपुर (पंच पहाड़ी) तीर्थ का वर्णन और महिमा श्री षटखण्डागम, धवला जैसे शास्त्रों में भी आता है। वहाँ पाँच सुन्दर रमणीक पर्वत हैं; उनमें विपुलाचल पर्वत पर समवशरण में भगवान महावीर की सर्व प्रथम दिव्यध्वनि खिरी थी; वहीं गौतम स्वामी ने गणधर पद प्राप्त किया था और बारह अंग की रचना की थी। तदुपरान्त राजगृही में तेईस तीर्थंकरों के समवशरण हुए थे। राजगृही श्रेणिक राजा की राजधानी थी, तथा मुनि सुव्रतनाथ के चार कल्याणक वहीं हुए थे। उस पावन धाम में भगवान का स्मरण करते हुए तथा भक्ति गान गाते हुए भक्तजन गुरुदेव के साथ विपुलाचल पर्वत पर चढ़ रहे थे... मानों गुरुदेव के साथ भगवान के समवशरण में जा रहे हों!

विपुलाचल पर तीन मंदिर हैं, उनमें महावीर भगवान आदि की प्रतिमाएँ तथा चरणकमल

विराजमान हैं। गुरुदेव के साथ सब भक्तों ने अर्घ्य चढ़ाया और फिर भक्ति हुई....

(१) 'वीर सभामां हीं गौतम पधार्या.....

अमृत वरस्या मेहरे....

वीरजीनी वाणी छूटी रे....'

(२) 'प्रभुनी वाणी जोर रसाल....

मनडुँ सांभलवा तलसे....'

यह दोनों स्तवन गुरुदेव ने अत्यन्त भावपूर्वक गवाये थे। उस समय का वातावरण ऐसा था मानो विपुलाचल पर भगवान का समवशरण लगा हो और भक्तजन भगवान से दिव्यध्वनि के लिये प्रार्थना कर रहे हों। वहाँ उल्लासपूर्वक भक्ति करने के पश्चात् दूसरे और तीसरे पर्वत की यात्रा की थी....

यात्रा के बाद तीसरे पर्वत की तलहटी में जलपान दिया जाता है; वहाँ सबने जलपान और विश्राम किया।

इस प्रकार तीन पर्वतों की यात्रा करके गुरुदेव नीचे पधारे... कुछ भक्तजनों ने चौथे पहाड़ी की भी यात्रा की।

दोपहर को जिनमन्दिर के आँगन में गुरुदेव का सुन्दर प्रवचन हुआ। प्रवचन के बाद गया और पटना के जैन समाज की ओर से गुरुदेव के प्रति एक अभिनन्दन-पत्र पढ़ा गया था और रात्रि को जिन मन्दिर में अद्भुत भक्ति हुई थी।

ता० १-३-५७, फाल्गुन कृष्णा अमावस्या के प्रातःकाल गुरुदेव शेष दो पर्वतों की यात्रा के लिये संघ सहित पधारे थे। पहले पाँचवें पर्वत पर गये; जहाँ चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ अंकित हैं। वहाँ दर्शन करके अर्घ्य चढ़ाया और फिर महान भक्ति हुई। पहले गुरुदेव ने दो स्तवन गवाये थे—

आश धरीने अमे आवीया रे...

अमने उतारो भवोदधि पार रे...

जिनराज लगन लगी रे...

—इसप्रकार विविध तीर्थों की यात्रा में गुरुदेव को उल्लास आने पर बारम्बार भावभीनी भक्ति कराते थे... और भक्तों को अपार हर्ष होता था। पंचम पहाड़ी पर पूज्य गुरुदेव की भक्ति के

पश्चात् बहिन श्री बहिन ने भी उमंग पूर्वक—

'आज तो बधाई मारे समवशरण दरबारजी.....'

—यह स्तवन गवाकर अच्छी भक्ति कराई थी। भक्ति के पश्चात् पाँचवीं टोंक पर निकले हुए प्राचीन जिनमंदिर के अवशेष तथा दो हजार वर्ष पुरानी अनेक दिगम्बर जिन प्रतिमाओं का गुरुदेव के साथ सबने अवलोकन किया था। दो हजार वर्ष पुराने जिन-वैभव को देखकर गुरुदेव के मुख से बारम्बार उद्‌गार निकलते थे कि देखो, इतिहास भी दिगम्बर जैनधर्म की साक्षी देता है।

पंचम पहाड़ी की यात्रा के पश्चात् गुरुदेव चौथी पहाड़ी की ओर चले। वहाँ जाते समय बीच में प्राचीन गुफाएँ आती हैं, उनका अवलोकन किया। गुफाओं की दीवारों पर जिन प्रतिमाओं की आकृतियाँ अंकित हैं। प्रवेश द्वार पर एक स्तंभ है जिसमें चार प्रतिमाएँ अंकित हैं। उस विशाल शांत गुफा में प्रवेश करते समय ऐसा लगता था कि पूर्वकाल में यहाँ अनेक संत मुनि रहे होंगे और ध्यान किया होगा।

चौथी पहाड़ी का नाम 'श्रमण गिरी' है; वहाँ सात सौ मुनि रहते थे और आत्मध्यान करते थे। उनका स्मरण करके गुरुदेव के मन में भी अनेक भावनाएँ जागृत होती थीं। उस पहाड़ी पर गुरुदेव ने अत्यन्त भावपूर्वक मुनिवरों की भक्ति गवाई थी—

म्हारा परम दिगंबर मुनिवर आया
सब मिल दर्शन कर लो,
हाँ सब मिल दर्शन कर लो...
बार-बार आना मुश्किल है
भाव भक्ति उर धर लो...
हाँ भाव भक्ति उर धर लो...

गुरुदेव की भावभीनी भक्ति सुनकर सब भक्त प्रसन्न हुए थे... पहाड़ी से उतरते हुए भी गुरुदेव धीरे-धीरे मुनिवरों की भक्ति बोलते थे।

—इसप्रकार पंच पहाड़ी तीर्थधाम की यात्रा सानन्द समाप्त हुई।

पंच पहाड़ी तीर्थधाम की जय....!

पंच पहड़ी तीर्थधाम में विचरे हुए तीर्थंकरों-संतों को नमस्कार!

जिनवाणी-पावन धाम को नमस्कार!

सम्यक्त्व की महिमा सूचक

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—जीव को तप आदि पत्थर के बोझ समान कब हैं ?

उत्तर—शांत भाव, ज्ञान, चारित्र और तप—यह सब यदि सम्यग्दर्शन के बिना हों तो वे पुरुष को पत्थर के बोझ समान हैं। (—आत्मानुशासन : १५)

प्रश्न—ऊपर जिन भावों को पत्थर के बोझ समान कहा है, वे महामणि के समान पूज्य कब होते हैं ?

उत्तर—यदि उन ज्ञानादि भावों के साथ सम्यग्दर्शन हो तो वे महामणि के समान पूजनीक हैं। (आत्मानुशासन : १५)

प्रश्न—अनंतकाल से चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए जीव ने क्या प्राप्त नहीं किया ?

उत्तर— (दोहा) लक्ष चौरासी योनि में भ्रमियो काल अनंत,
पण समकित तें नव लह्युँ, यह जानो निर्भ्रान्त।

—हे जीव ! चौरासी लाख योनियों में अनादि काल से भटकते हुए तूने कभी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया-ऐसा निश्चित जान ! (—योगसार : २५)

प्रश्न—आत्म स्वरूप को जाने बिना पुण्य करे तो क्या होता है ?

उत्तर—हे जीव ! यदि तू आत्मा को नहीं जानेगा और मात्र पुण्य-पुण्य ही करता रहेगा तो तू सिद्धि सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा, किन्तु पुनः पुनः संसार में ही भटकेगा। क्योंकि—

(दोहा) जो निजरूप न जानता, करे पुण्य ही पुण्य,
भटके वह संसार में, कभी न शिवसुख होय॥ (योगसार:१५)

प्रश्न—मोक्ष का कारण क्या ?

उत्तर—(दोहा) निज दर्शन बस श्रेष्ठ है, अन्य न किंचित् मान,
हे योगी शिवहेतु यह निश्चय से तू जान।

हे योगी ! एक परम आत्मदर्शन ही मोक्ष का कारण है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई मोक्ष का

कारण नहीं है—ऐसा तू निश्चय से समझ। (—योगसार : १६)

प्रश्न—जगत में उत्तम रत्न कौनसा है ?

उत्तर—सम्यक्त्व रत्न जगत में सर्वश्रेष्ठ है।

प्रश्न—मोक्ष प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—(दोहा) जिनवर अरु शुद्धात्म में, किंचित् भेद न जान,
मोक्षार्थ हे योगीजन ! निश्चय से यह मान।

हे योगी ! मोक्ष प्राप्त करने के लिये अपने शुद्धात्मा में और जिन भगवान में किंचित्मात्र अन्तर न समझ—इस प्रकार तू निश्चय से मान। (योगसार : २०)

चैतन्यस्वभाव के ध्यान द्वारा वर्तमान में भी

सम्यग्दर्शनादि हो सकते हैं

[मोक्षप्राभृत गाथा ७३ से ७७ के प्रवचनों से]

संत आत्मा का आनन्दस्वभाव बतलाकर उसके अनुभव की प्रेरणा करते हैं; उसे सुनकर हे जीव ! तू उल्लसित हो और अन्तर में उसका उद्यम कर, तो तुझे अवश्य उसकी प्राप्ति होगी। अनंत भव का नाश करनेवाले ऐसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यही उपाय है; अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिये जो इसे अस्वीकार करता है, वह भव भ्रमण से छूटने का ही इन्कार करता है। जो आत्मा का हित करने के लिये जागृत हुआ है, उसे जगत् में कोई रोकनेवाला है ही नहीं।

आत्मा के ज्ञानानन्दस्वरूप को जानकर उसमें एकाग्र होना ही ध्यान है; वही सम्यग्दर्शन का उपाय है। चैतन्य के ध्यान द्वारा सम्यग्दर्शन करना ही धर्म का मूल है। परन्तु अज्ञानी जीव कहते हैं कि इसकाल में ऐसा शुद्ध आत्मध्यान नहीं हो सकता; अर्थात् इसकाल में सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।—तो आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसा कहनेवाले मूर्ख हैं। अरे जीव ! तू राग की रुचि करके

उसके ध्यान में तो लीन होता है, किंतु आत्मा के शुद्धस्वरूप में एकाग्र नहीं होता; इसलिये तेरी रुचि ही विपरीत है। जहाँ रुचि हो, वहाँ एकाग्रता होती है। तू बाह्य में—सांसारिक कार्यों में एकाग्र होकर तो वर्तता है, वहाँ ध्यान एकाग्र करता है, किंतु रागरहित चैतन्यस्वरूप आत्मा में ध्यान नहीं लगाता, उसकी प्रीति नहीं करता और काल का बहाना बतलाता है, वह तेरी मूढ़ता है। तू काल का नाम लेता है, किन्तु कहीं काल तुझे स्वरूप की रुचि करने से नहीं रोकता। तू अपने स्वरूप की रुचि करके उसमें एकाग्र हो तो कहीं कर्म या काल तुझे रोकते नहीं हैं। इस पंचम काल में भी अनेक संत, चैतन्य का ध्यान करके सम्यग्दर्शनादि को प्राप्त हुए हैं और हो रहे है। सांसारिक कार्यों में जहाँ प्रीति होती है, वहाँ उनके विचारों में कैसा लीन हो जाता है ?—इतना लीन होता है कि खाना-पीना भी भूल जाता है और धर्म की बात आने पर कहता है कि यह हमसे नहीं हो सकता!—तो आचार्यदेव कहते हैं कि तुझे आत्मा की प्रीति नहीं है, किंतु विषयों की प्रीति है; इसलिये सांसारिक कार्य उत्साहपूर्वक करता है किंतु आत्मा के ध्यान में उत्साह नहीं आता। तेरा अभिप्राय ही मिथ्या है। रागरहित चैतन्य की श्रद्धा भी तू नहीं करता। आचार्य नाम धारण करे, मुनि कहलाये और कहे कि इसकाल सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता! तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि वह जीव, स्वभाव से अत्यन्त भ्रष्ट है। तुझे सम्यग्दर्शन ही नहीं है तो फिर मुनिपना या आचार्यपना कहाँ से आया? सम्यग्दर्शन का इन्कार करना और स्वयं को मुनिपना मनाना - वह तो मूढ़ता है। इसकाल सम्यग्दर्शन नहीं है, उसका तो यह अर्थ हुआ कि इसकाल धर्म ही नहीं है;—ऐसा माननेवाला मूढ़ बहिरात्मा है। 'अनुभव प्रकाश' में पं० दीपचंदजी कहते हैं कि—'स्वरूप को समझना इसकाल कठिन है'—ऐसा कहकर जो स्वरूप का उद्यम नहीं करते, वे स्वरूप की चाह मिटानेवाले बहिरात्मा हैं। 'यह पंचम काल है, इसलिये इसकाल में स्वरूप का अनुभव नहीं हो सकता, इसकाल में आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता, इसकाल सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता, स्वरूप को समझना कठिन है'—ऐसा कहनेवाला जीव, आत्मा को समझने का उद्यम नहीं करता, इसलिये वह बहिरात्मा है। अहो! ध्येय स्वभाव आत्मा है; उसे लक्ष में लिये बिना धर्म नहीं होता। इसकाल में आत्मस्वभाव की ओर नहीं पहुँचा सकता—ऐसा कहनेवाले को विषयों की ओर जाना है; इसलिये वे उसे सरल मालूम होते हैं। चैतन्यस्वभाव तो सुगम है - सहज है; अंतर में प्रीति करके उद्यम करे तो उसकी प्राप्ति होती है।

भाई, तू निर्णय कर कि तेरा सुख बाह्य में है या अंतर में? सुख तो तेरे अंतर्स्वभाव में ही हैं;

उस अंतर्स्वभाव में तू देख... दृष्टि बाह्य में है, उसके बदले अंतरोन्मुख कर! संत वही कह रहे हैं, जो तुझसे हो सकता है। जिसप्रकार अभव्य को कभी चैतन्य का ध्यान नहीं होता, उसीप्रकार जो जीव ऐसा कहते हैं कि 'चैतन्य का ध्यान इसकाल नहीं हो सकता'—वे भी अभव्य जैसे हैं। सातवें नरक के संयोगों में पड़ा हुआ जीव भी अंतर में चैतन्य के ध्यान द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, और तू मनुष्य अवतार लेकर कहता है कि मुझसे नहीं हो सकता! तो तेरी रुचि ही चैतन्य की ओर नहीं है। जिसे चैतन्य का उपदेश सुनकर उस ओर रुचि उत्पन्न नहीं होती और उसका अस्वीकार करता है, उसे तो अभव्य कहा है। स्वयं को चैतन्य के ध्यान की उग्रता है, इसलिये आचार्यदेव उसका निषेध करनेवाले को अभव्य कहते हैं। जिसप्रकार प्रवचनसार में केवली भगवान के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख का बहुत वर्णन करके फिर कहा है कि—केवली भगवान का सुख समस्त सुखों में उत्कृष्ट है—ऐसी जो श्रद्धा नहीं करता, वह अभव्य है; उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि अहो! चैतन्य का ध्यान नहीं हो सकता—ऐसा कहकर जो विषय-कषायों में रत वर्तता है, वह अभव्य है; उसे मोक्ष के उपाय की प्रीति नहीं है। अरे! जो आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा करने से भी इन्कार करता है, उसके आत्मा में मोक्ष की भनक नहीं पड़ती। धर्म नहीं हो सकता और राग हो सकता है—यह बात ही पुरुषार्थहीन मूढ़ जीव की है। तू आत्मा को समझना असक्य बतलाता है और विषयों में वर्तना तुझे सुगम लगता है तो तेरे कदम ही उल्टे हैं। चैतन्यस्वभाव की सम्यक्श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान इस काल भी हो सकते हैं। जिसे आत्मा का अंतर सुख प्यारा है, वह तो अंतर्मुख होकर ध्यान द्वारा उसका पता लगाता है; किन्तु जिसे संसार-सुख प्यारा है, वह कहता है कि —इसकाल में आत्मा का पता नहीं लग सकता;—ऐसा कहकर विषय सुख में ही लीन वर्तता है किन्तु आत्मा के अतीन्द्रिय सुख के अनुभव का उद्यम नहीं करता।—वह जीव सम्यग्दर्शन से रहित है, वह भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि वह अभव्य है। जब चैतन्य की श्रद्धा भी नहीं करता, तब मोक्ष की योग्यता कैसी ?

आत्मा चैतन्यशक्ति का पिण्ड है; उसकी श्रद्धा करके उसमें एकाग्र होने पर मुनिदशा प्रगट होती है और वहाँ समिति, गुप्ति तथा महाव्रत होते हैं। किन्तु जो जीव, चैतन्य के ध्यान का ही इन्कार करता है और व्रत-समिति-महाव्रत का होना मानता है; उसे व्रतादि के स्वरूप की ही खबर नहीं है। चैतन्य की एकाग्रता के बिना महाव्रत पालन करना मानता है, सम्यग्दर्शनादि के बिना व्यवहारचारित्र होना मानता है तो उसे वास्तव में चारित्र के स्वरूप की ही खबर नहीं है।

निश्चयसम्यग्दर्शन के बिना मुनिदशा का चारित्र होता ही नहीं और चैतन्य के ध्यान बिना निश्चयसम्यग्दर्शन नहीं होता। इसलिये जो चैतन्य के ध्यान का ही इन्कार करता है, उसे तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होता; फिर मुनिदशा कैसी ? तथा मुनिदशा के बिना पंच महाव्रतादि कैसे ? वह तो राग में ही मूढ़ है। जो चिदानन्दस्वभाव का आदर नहीं करते, वे मूढ़ हैं; इसलिये धर्म के जिज्ञासुओं को आत्मा के चिदानन्दस्वभाव का आदर करके उसके ध्यान का उद्यम करना चाहिये। इसकाल भी चैतन्य के ध्यान द्वारा सम्यग्दर्शनादि हो सकते हैं'—ऐसा जानकर, हे जीव! उसका उल्लास कर!

अपने आत्मस्वरूप को समझना सुगम है; और उसमें कष्ट नहीं किन्तु आनन्द है। अनादि से स्वरूप का अनभ्यास और राग का रुचि के कारण आत्मा की समझ कठिन मालूम होती है, किन्तु यदि राग की रुचि छोड़कर और आत्मा के स्वभाव के रुचि करके यथार्थ उद्यम करे तो अपना आत्मा अवश्य ही अनुभव में आ सकता है।—इस प्रकार अपना स्वरूप समझना सरल है।

बाह्य कार्यों को करना आत्मा के अधिकार की बात नहीं है; किन्तु अपने स्वरूप को समझना चाहे तो वह दो घड़ी में भी हो सकता है। आठ वर्ष का बालक, सातवें नरक का नारकी और मेढ़क भी अंतर में चैतन्य की लगन लगाकर अपूर्व आत्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। आत्मा में अचिन्त्य शक्ति है, वह यथार्थ पुरुषार्थ द्वारा निजशक्ति की सँभाल करे तो क्षणमात्र में सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करता है। निजशक्ति के भान बिना अनंतानंत काल व्यतीत हो गया; तथापि जहाँ अंतर्मुख होकर अचिन्त्य स्वशक्ति का अवलम्बन लिया कि वह शक्ति अपना प्रगट कार्य करती है—सम्यग्दर्शनादि-ज्ञानादि करती है। यह आत्मा जागृत होकर अपना हितकार्य करने के लिए तैयार हुआ हो और हितकार्य न कर सके—यह बात तो सुनने योग्य भी नहीं है। अपने आत्मा की शक्ति का विश्वास आना चाहिये कि—अपने आत्मा की अचिन्त्य शक्ति द्वारा मैं अपना हित साधन कर लूँ; उसमें न तो किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता है और न कोई रोकनेवाला है।

आचार्यदेव समयसार में कहते हैं कि—यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे, उसमें लीन हो, परीषह आने पर चलायमान न हो, तो घातिकर्म का नाश और केवलज्ञान की उत्पत्ति करके मोक्ष प्राप्त कर ले!—आत्मानुभव की ऐसी महिमा है। मिथ्यात्व का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करना सुलभ है; इसलिये श्रीगुरुओं ने यही उपदेश प्रधानता से दिया है।

अरे जीव! रागादिक से किंचित् पृथक् होकर अंतर में अपने चैतन्य विलासरूप आनन्द को देख! उस आनन्द को देखते ही तेरा शरीरादि का मोह तुरंत छूट जायेगा। चैतन्यानंद के अनुभव से शरीरादिक परद्रव्यों के मोह को तू 'झगिति' अर्थात् झट से छोड़ सकेगा। यह बात सरल है, क्योंकि अपने स्वभाव की है। परवस्तु को अपना बनाना तो कठिन, अर्थात् असम्भव है; लाख प्रयत्न करने पर भी वह नहीं हो सकता। और अपने आत्मा का अनुभव करना स्वाधीन होने से सुगम है; दो घड़ी के प्रयत्न से उसकी प्राप्ति हो सकती है; किन्तु उसके लिये अंतर का अपूर्व उत्साह और प्रयत्न होना चाहिये।

जो पुरुषार्थ हीनता की बातें करके रोना रोते हैं कि—अरे! हमें तो अनेक प्रकार की प्रतिकूलताएँ हैं; वहाँ आत्मा का कार्य कहाँ से कर सकते हैं?—उनसे संत कहते हैं कि अरे पौरुष हीन! सातवें नरक की अनन्त प्रतिकूलता में पड़े हुए जीवों ने भी आत्मा का अनुभव किया है, तो फिर सातवें नरक जैसी पीड़ा तुम्हें तो यहाँ नहीं है! ऐसा मनुष्यभव प्राप्त किया, सत्समागम मिला, तथापि अंतर में उद्यम नहीं करते और रोते हो!! तुम्हें आत्मा की सच्ची प्रीति हो तो अंतर में उसके अनुभव का उद्यम करो! तुम प्रयत्न करोगे तो कोई रोकनेवाला नहीं है। आत्मा का हित करने के लिये जागृत हुआ, उसे बाधा उत्पन्न करनेवाला जगत् में कोई है ही नहीं।

'अनुभव प्रकाश' में कहते हैं कि—'आज के समय में स्वरूप को समझना कठिन है'—ऐसा कहकर जो उसका उद्यम छोड़ देता है, और बाह्य विषय-कषायों में उत्साहपूर्वक वर्तता है, वह स्वरूप की चाह मिटानेवाला बहिरात्मा है। जब अवकाश मिलता है, तब विकथा करता है, उसके बदले स्वरूप के परिणाम-विचार करे तो कौन रोकता है? कई लोग ऐसा बहाना बतलाते हैं कि—हमें काम बहुत है, हमें आत्मा को समझने का अवकाश ही नहीं मिलता! अरे भाई! दूसरे सांसारिक कार्यों में तो अपने परिणाम लगाने का तुझे अवकाश मिलता है और आत्मा के कार्यों में परिणाम लगाने का अवकाश नहीं मिलता?—यह तो तेरी रुचि की विपरीतता है। अहो! देखो, आश्चर्य की बात है कि—परपरिणाम तो सुगम और निजपरिणाम विषम बतलाता है!! अंतर में सुख है, वहाँ तो परिणाम नहीं लगाता और दौड़ा-दौड़ करके दुःख में पड़ता है! स्वयं ज्ञाता होने पर भी पर को तो जान सकता है और स्वयं अपने को नहीं जान सकता—ऐसा कहते हुए लज्जा भी नहीं आती! अरे जीव! तुझे शर्म आना चाहिये कि तूने स्वयं अपने को नहीं जाना! अहो! जिसका यश भव्य जीव गाते हैं, जिसकी अपार महिमा जानने पर महान भव-भाव मिट जाता है—ऐसे इस शुद्ध

आत्मा को सर्व प्रकार के उद्यम द्वारा जान लेना चाहिये। जगत् में मोक्षार्थी जीवों को करने योग्य कर्तव्य हो तो वह एक ही है।

आत्मा ज्ञान-आनंदमय है, उसमें अन्तर्मुख एकाग्र होकर उसका ध्यान करना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म का उपाय है। जो ऐसा कहता है कि इसकाल आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता, वह जीव वास्तव में धर्म को नहीं मानता; वह तो रागादिक को ही धर्म मानता है; वह मूढ़ है। इसकाल में आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता—इसकाल सम्यग्दर्शन नहीं सकता—इसका अर्थ यही हुआ कि इसकाल आत्मा नहीं है।—ऐसे जीव की श्रद्धा में आत्मा का स्वीकार नहीं है, किंतु व्यवहार के राग का ही स्वीकार है; और राग करते-करते धर्म हो जायेगा—ऐसा उसका विपरीत अभिप्राय है।

अहो! पहली ही बार में ऐसा उल्लास आना चाहिये कि मैं अपने चिदानन्दस्वभाव का ध्यान करके उसमें एकाग्र होऊँ। राग मेरा स्वरूप नहीं है।—ऐसा उल्लास अंतर में आये तो आत्मा की ओर वीर्य उल्लसित हो। आत्मस्वभाव में एकाग्र होकर उसका अवलम्बन लिये बिना कदापि सम्यग्दर्शनादि धर्म नहीं होता। जो जीव आत्मस्वभाव के अवलम्बन का तो अस्वीकार करता है और राग करते-करते धर्म का हो जाना मानता है, वह महान मूढ़ है; अभव्य के और उसके अभिप्राय में कोई अंतर नहीं है; इसलिये आचार्यदेव ने ७२ वीं गाथा में उसे अभव्य कहा है। अरे, यदि तुझे धर्म का प्रेम हो तो एकबार आत्मा की ओर का उल्लास तो ला! तुझे बाह्य प्रवृत्तियों में—पूजा, भक्ति, यात्रादि के शुभराग में उल्लास आता है, उसके बदले ज्ञानानंदस्वभाव में अपने उल्लास को लगा तो उस स्वभाव में एकाग्रता द्वारा सम्यग्दर्शनादि हों। वर्तमान में इस भरतक्षेत्र में भी ऐसा हो सकता है।

यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है; उसके दक्षिणी भाग में अपना भरतक्षेत्र (५२६ योजन से कुछ अधिक) है; उत्तरी भाग में ऐरावतक्षेत्र है तथा पूर्व-पश्चिम भाग में विदेहक्षेत्र है; बीच में मेरु पर्वत है। महाविदेहक्षेत्र में तो सदैव धर्मकाल प्रवर्तमान है, और वहाँ के जीव मुक्ति प्राप्त कर रहे हैं। इस भरतक्षेत्र में इस समय साक्षात् मोक्ष नहीं है, किंतु मोक्ष के कारणभूत शुद्धात्मा के ध्यान द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो सकता है।

भरतक्षेत्र में इस काल में आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता - ऐसा माननेवाले महा मूढ़-मिथ्यादृष्टि हैं। साधुपने के व्यवहार-आचार-पंच महाव्रतादि को पालन करना तो मानते हैं और

आत्मा की सम्यक्श्रद्धा होना अस्वीकार करते हैं, तो उन व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि जीवों को धर्म की गंध तक नहीं आई है। वे आत्मा को एक ओर रखकर, राग से धर्म करने निकल पड़े हैं; किंतु ऐसा भगवान का मार्ग नहीं है। अरे! वीतराग सर्वज्ञदेव ने जिनसूत्र में इसकाल इस भरतक्षेत्र में भी आत्मभावना में स्थित मुनियों को धर्मध्यान होना कहा है। सम्यक्त्वी गृहस्थ को चौथे गुणस्थान में भी कभी-कभी धर्मध्यान होता है। चिदानन्दस्वरूप आत्मा के ध्यान के बिना सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। इसलिये चिदानन्दस्वभाव के ध्यान की बात सुनकर जो उल्लसित नहीं होता और उल्टा निषेध करके अनादर करता है, उस जीव को धर्म का प्रेम ही नहीं है; उसे राग का प्रेम है, इसलिये राग मालूम होता है और धर्मध्यान को वह अशक्य मानता है।—उसे धर्म के स्वरूप का भान ही नहीं है।

अंजन चोर आदि का उदाहरण लेकर कोई 'आनूँ तानूँ कुछ न जानूँ, भगवान वचन परमानूँ'—ऐसा कहे, किंतु स्वयं मूल बात का कोई निर्णय न करे तो उसे धर्म नहीं हो सकता। भगवान ने क्या कहा है, उस मूल बात तो जानता है, किन्तु कोई सूक्ष्म बात निर्णय में न आये तो 'भगवान ने कहा वह प्रमाण'—इस प्रकार धर्मी, समाधान कर लेता है। आत्मा क्या, उसका स्वभाव क्या, सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का स्वरूप क्या—ऐसी मूलभूत बात का परीक्षापूर्वक भगवान के कथनानुसार जानकर निर्णय करता है। जो यथार्थ निर्णय करने से इन्कार करता है, तथा राग द्वारा धर्म मानता है, पुण्याश्रव को भला जानता है और फिर ऐसा कहता है कि—'आनू तानूँ कुछ न जानूँ, भगवान वचन परमानूँ'—तो ऐसा भगवान के मार्ग में नहीं चल सकता। अभी तो विपरीत मान्यता की गुत्थियाँ पड़ी हैं; भगवान ने जो कहा है, उससे विपरीत धर्म का स्वरूप मान रहा है, तो उसने भगवान का कथन प्रमाण किया ही नहीं। इसलिये धर्म के स्वरूप को पहिचान कर, चिदानन्दस्वरूप आत्मा के ध्यान का उद्यम करना चाहिये—ऐसा आचार्यदेव का उपदेश है; और वह इसकाल में भी हो सकता है।

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस ७७वीं गाथा में कहते हैं कि—इस समय इस पंचम काल में भी चैतन्य के ध्यान द्वारा जो मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धतासहित होते हैं, वे आत्मध्यानपूर्वक देह त्याग करके स्वर्ग में इन्द्र पद प्राप्त करते हैं, तथा लौकान्तिक देव भी होते हैं। आत्मध्यान द्वारा आराधकरूप से देह त्याग करके, स्वर्ग में इन्द्रादि होकर, फिर वहाँ से मनुष्य भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं।—इस प्रकार इस दुःषम काल में भी एकावतारी हुआ जा सकता है।

साक्षात् मोक्ष के कारणरूप शुक्लध्यान इस काल भरतक्षेत्र में नहीं है;—ऐसा जिनसूत्र में कहा है; किन्तु एकावतारी हुआ जा सके, ऐसा आत्मध्यान तो इस काल भी हो सकता है; इसलिये ध्यान का प्रयत्न करना, वह कहीं निष्फल नहीं है। रे भाई! अनंत भव का नाश करके, एक ही भव में मोक्ष प्रदान करे—ऐसा धर्मध्यान तो इस काल में भी हो सकता है; इसलिये उसका निषेध क्यों करता है? अंतर्मुख चिदानन्दस्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान करके, उसमें एकाग्रतारूप धर्मध्यान हो सकता है, और इस प्रकार शुद्ध रत्नत्रय धर्म की आराधना करके इस काल में भी मुनिवर एक भव में मुक्ति प्राप्त करनेवाले एकावतारी हो जाते हैं। वे यहाँ से जाकर स्वर्ग में इन्द्र या लौकांतिक देव आदि होते हैं। लौकांतिक देवों को देवर्षि कहा जाता है, वे देवों में ऋषि समान होते हैं, ब्रह्मचारी होते हैं। तीर्थंकरदेव के वैराग्स प्रसंग पर आते हैं। वे सब एकावतारी ही होते हैं। यहाँ से आत्मध्यान द्वारा रत्नत्रय की आराधना करके गये हैं, इसलिये एक भव में मुक्ति प्राप्त कर लें—ऐसी योग्यता प्रगट हो जाती है।—इसप्रकार इसकाल में भी आत्मध्यान द्वारा शुद्ध रत्नत्रयरूपी धर्म की आराधना हो सकती है। इसलिये इसकाल में आत्मध्यान का निषेध करके, व्यवहार क्रियाकांड से धर्म मनाना योग्य नहीं है। इसकाल में आत्मध्यान होने का अस्वीकार करते हैं और राग से धर्म मनवाते हैं, वे जीव अभव्य के समान मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिये हे भव्य! तू राग की और विषय कषायों की रुचि छोड़कर, चैतन्यस्वरूप आत्मा के ध्यान का (श्रद्धा-ज्ञान-रमणता का) अंतर में उद्यम कर; जिससे तेरे भव का अंत आ जाये!—ऐसा संतों का उपदेश है।

नमस्कार हो पंचम काल के आत्मध्यानी संतों को!

मोक्ष के कारणरूप चारित्र

मोक्ष के कारणरूप चारित्र, वह आत्मा का स्वधर्म है; वह कहीं बाह्य में नहीं है किन्तु जीव के अनन्य परिणाम ही हैं। 'अनन्य परिणाम' अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वभाव में अभेद हुए परिणाम, वह चारित्र है। राग वास्तव में अनन्य परिणाम नहीं है किंतु स्वभाव से अन्य है; इसलिये वह वास्तव में चारित्र या मोक्षमार्ग नहीं है। ***[—मोक्षप्राभृत गाथा ५०-५१ के प्रवचन से]***

यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दरस से परिपूर्ण है; उसके परम आनन्द का प्रगट पूर्ण अनुभव होना, वह मोक्ष है। प्रथम, मैं देह से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ—ऐसी अन्तर् प्रतीति एवं अनुभव होना, सो सम्यग्दर्शन है; पश्चात् ऐसे आत्मा के अनुभव में लीनता हो, वह सम्यक्चारित्र है और फिर पूर्ण ज्ञान-आनन्द प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष है। मोक्ष कोई भिन्न वस्तु नहीं है किन्तु आत्मा की पूर्ण आनन्दमय शुद्धदशा ही मोक्ष है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम, वह धर्म है और वे आत्मा के ही अभेद परिणाम हैं। आत्मा, राग-द्वेष-मोहरहित परिणामरूप परिणमित हुआ, वही धर्म है। शुद्ध-आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम ही धर्मात्मा का कार्य है; इसके अतिरिक्त विकार या बाह्य कार्य वास्तव में धर्मी के नहीं हैं। सिद्ध परमात्मा जैसे शुद्ध ज्ञानानन्द से परिपूर्ण हैं, वैसा ही मेरे आत्मा का स्वभाव है। और समस्त जीव स्वभाव से वैसे ही हैं। संसारी जीवों की पर्याय में अशुद्धता है, वह उनके मूलस्वभाव में नहीं है किंतु ऊपर का क्षणिक उपाधिभाव है; शुद्ध स्वभाव के अनुभव से वह अशुद्धता दूर हो जाती है। धर्मी अपने आत्मा का ऐसा शुद्धरूप से अनुभव करता है और सर्व जीवों को भी स्वभाव से आप समान शुद्ध मानता है, मात्र पर्याय की अशुद्धता जितना ही नहीं मानता; इसलिये धर्मात्मा को पर्यायबुद्धि के राग द्वेष नहीं होते। 'सर्व जीव हैं सिद्धसम'—किसप्रकार? कहते हैं कि शुद्धस्वभाव की दृष्टि से। जिसने अपने आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से शुद्ध सिद्ध समान अनुभव किया है, वही सर्व जीवों को सिद्ध समान मानता है। अज्ञानी को अपने आत्मा का ही भान नहीं है, वहाँ दूसरे आत्मा को सिद्ध समान कहाँ से जानेगा?—यहाँ तो आत्मा के सम्यग्ज्ञान के उपरान्त मुनि के वीतरागी चारित्र की बात है। मुनियों को शुद्धात्मस्वरूप में लीनता से जो वीतरागी-चारित्र प्रगट हुआ है, वे आत्मा के ही पणिाम हैं, आत्मा से पृथक् नहीं हैं। जिसप्रकार ज्ञान-दर्शन आत्मा के ही परिणाम हैं, उसीप्रकार चारित्र भी आत्मा के ही अभेद परिणाम हैं। चारित्र कहीं बाह्य

में-शरीर की क्रिया में नहीं है, राग में नहीं है, किंतु आत्मा में एकाग्रतारूप जो वीतरागी परिणाम हुए, वही चारित्र है, वही धर्म है। चारित्र है, वह स्वधर्म है, वह आत्मा का ही वीतरागी समभाव है। राग वास्तव में स्वधर्म नहीं है; वह तो अधर्म है। जिसप्रकार दर्शन-ज्ञान, वे जीव के अनन्य परिणाम हैं—जीव से पृथक् नहीं हैं; उसीप्रकार चारित्र भी जीव के अनन्य परिणाम हैं—जीव से पृथक् बाह्य में कहीं चारित्र नहीं है। आत्मा के स्वरूप में चरनेरूप चारित्र, वह वीतरागी परिणाम है और वही मोक्ष का कारण है। शरीर की नग्नदशा में चारित्र नहीं रहता, पंचमहाव्रत के शुभ विकल्प में चारित्र नहीं रहता; आत्मा की वीतरागी परिणति में चारित्र रहता है। चारित्र को आत्मा के 'अनन्य परिणाम' कहा है; राग वास्तव में आत्मा के अनन्य परिणाम नहीं हैं; राग की आत्मस्वभाव के साथ एकता-अनन्यता नहीं है, किन्तु भिन्नता है। चारित्र परिणाम की आत्मा के स्वभाव के साथ अनन्यता-एकता है, अर्थात् वह आत्मा का स्वधर्म है। जो आत्मा में अभेद हुए, वे आत्मा के अनन्य परिणाम हैं और वही आत्मा का धर्म है। ऐसा धर्म वह मुक्ति का कारण है।

चारित्र तो आत्मा के शुद्ध वीतरागी परिणाम हैं; उसमें राग-द्वेष की कालिमा नहीं है। जिसप्रकार स्फटिकमणि का स्वभाव स्वच्छ-उज्ज्वल है; उसमें लाल-काली परछाई से वह लाल-काला दिखाई देता है; किन्तु स्फटिक का मूल स्वभाव कहीं लाल-काला नहीं है; उसीप्रकार यह चैतन्य स्फटिक आत्मा तो उज्ज्वल-स्वच्छ है; उसके स्वभाव में राग-द्वेष की कालिमा नहीं है; किन्तु पर्याय में राग-द्वेष की परछाईं से वह मलिन दिखाई देता है। देखो, कर्म के कारण मलिनता हुई-ऐसा नहीं है, किंतु अपने राग-द्वेष परिणामों के कारण ही आत्मा मलिन दिखाई देता है, किन्तु उसके मूल स्वभाव को देखें तो वह उपाधिरहित स्वच्छ-निर्मल वीतरागी ही है। जिसप्रकार-पीला, लाल या हरा वह स्फटिक का स्वभाव नहीं है; उसी प्रकार आत्मा में राग-द्वेष-मोह, वह अनन्य स्वभाव नहीं है किन्तु उपाधिरूप अन्य भाव है। चारित्र तो आत्मा का अनन्य भाव है और राग-द्वेष-मोह आत्मा के स्वभाव से अन्य है; उस विकारी परिणाम के कारण आत्मा अनेक प्रकार का दिखाई देता है, किन्तु निर्विकारी परिणाम तो आत्मा में अभेद है; इसलिये उसमें एकता है; वे आत्मा के अनन्य परिणाम हैं। यहाँ स्फटिक का उदाहरण देकर आत्मा का एकरूप शुद्ध स्वभाव तथा विकार का आत्मस्वभाव का अन्यपना बतलाना है। चारित्र-परिणाम में आत्मा की वीतरागी शांति है-उपशमरस का अनुभव है और राग परिणाम में तो आकुलतारूपी होली है—कषायरूपी अग्नि है; उसमें आत्मा की शांति नहीं है।

आत्मा का ज्ञान-आनन्द स्वभाव है; उस स्वभाव में एकता होने का नाम चारित्र है। आत्मा चैतन्य-चमत्कार से परिपूर्ण चिन्तामणि है; उसका ज्ञान प्रकाश, जगत का प्रकाशक है; इसके सिवा रत्नमणि का प्रकाश तो जड़ है। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में पदार्थों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है; वह वास्तव में उसकी स्वच्छता के कारण दिखाई देता है; उसी प्रकार आत्मा स्वच्छ चैतन्य-दर्पण है, उसके ज्ञान-दर्पण में परवस्तु दिखाई दे, वहाँ अज्ञानी मूढ़ प्राणी ज्ञान के स्वच्छ स्वभाव को भूलकर पर को अपना मानता है; राग हो, वहाँ राग के साथ आत्मा की एकता मानता है; वह चैतन्य के स्वभाव की स्वच्छता को नहीं जानता, इसलिये आत्मा के स्वभाव में एकतारूप वीतरागी चारित्र उसे नहीं होता। धर्मी सम्यक्त्वी को अल्प राग-द्वेष होता है, किन्तु वे उस राग को अपने नित्यस्वभाव के साथ व्याप्य-व्यापक (एकमेक) नहीं मानते। क्षणिक पर्याय में है, किंतु वह मेरा नित्यस्थायी स्वभाव नहीं है; स्थायी स्वभाव शुद्ध ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण है; उसके स्वसंवेदन द्वारा राग का अभाव हो जाता है। राग को स्वभाव में जमा नहीं करते किन्तु उससे पृथक् ही जानते हैं। अज्ञानी राग को ही आत्मा मानते हैं; राग से पृथक् आत्मा की उन्हें खबर नहीं है—भेदज्ञान नहीं है; इसलिये वे तो राग-द्वेष-मोहादिक अनेकानेक प्रकार से जीव का अनुभव करते हैं, किन्तु एकरूप ज्ञायकस्वभाव का अनुभव नहीं करते, इसलिये उन्हें सम्यग्दर्शन नहीं है।

देखो, कान और आँख का व्यापार बन्द कर देने पर भी अंतर में विचार तो चलता है न! तो अंतर में एक चैतन्यतत्त्व इससे पृथक् है। आँख-कान से तथा अंतरंग मन के संकल्प-विकल्पों से भी पार ज्ञान के स्वसंवेदन से आत्मा पकड़ा जाता है; वह अंतरंग ज्ञान स्वसंवेदन का विषय है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में पकड़कर, उसमें परिणाम की लीनता, सो चारित्र है और वह मोक्ष का कारण है। बीच में राग आये, वह मोक्ष का नहीं किन्तु बंध का ही कारण है।

नया प्रकाशन—

शासन प्रभाव

आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी द्वारा जो जैनधर्म की प्रभावना उन्नति हो रही है, इसकी पूर्ण सत्य प्रकाशक पुस्तिका 'शासन प्रभाव' मंगाकर अवश्य पढ़िये, बड़ी साइज के २४ पृष्ठ की पुस्तक के सिर्फ =) पोस्टेज -) आना कुल =) की टिकटें भेजकर मंगाइये।

पता :—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर टस्ट, पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सम्यक्त्व की महिमा सूचक

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—जीव को अहितकारी कौन है ?

उत्तर—तीनकाल तीनलोक में जीव को मिथ्यात्व समान अन्य कोई अहितकारी नहीं है।

(—रत्नकरण्ड श्रावकाचार-३४)

प्रश्न—जीव ने पूर्वकाल में काहे की भावना नहीं भायी है ?

उत्तर—जीव ने पूर्वकाल में मिथ्यात्वादिक भावों की ही भावना भायी है, किन्तु सम्यक्त्वादि भावों की भावना कभी नहीं भायी। (—नियमसार)

प्रश्न—ज्ञानादि सर्व गुणों की शोभा किससे है ?

उत्तर—जिसप्रकार नगर की शोभा द्वारों से है, मुख की शोभा नेत्रों से है और वृक्ष की स्थिरता मूल से है, उसी प्रकार ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य की शोभा सम्यग्दर्शन से है।

(—भगवती आराधना :७४०)

जिज्ञासुओं और जिन मन्दिरों को भेंट

आत्मधर्म मासिक की सजिल्द फाइलें जिसका प्रत्येक का ३।।।) रुपये मूल्य है, यह फ्री देनी हैं जिसमें पूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन हैं। वर्ष १-५-११-२२ इन चार सालों की ही फाइलें हैं। एक-एक फाइल का डाकखर्च ।।) आने भेजकर मंगा लेवें। ज्यादा मंगानेवालों को रेल पार्सल से भेजी जा सकती हैं।

पता:—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

तू आनन्दित हो!

ज्ञान की भाँति आनन्द भी आत्मा का स्वभाव है। उस स्वभाव के अनुभव से सम्यक्त्वी धर्मात्मा को अपने आत्मिक आनन्द का वेदन हुआ है।

अहो! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने आत्मा के अतिरिक्त कहीं सुख नहीं देखते, वे उसको अपने आत्मा में ही देखते हैं; इसलिये उन्हें कभी भी आत्मा की महिमा छूटकर पर की महिमा नहीं आती।

हे वत्स! अपना आनन्द अपने में ही ढूँढ़! तेरा आनन्द तुझमें ही भरा है; वह बाह्य में ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। तेरा पूर्ण द्रव्य ही सर्व प्रदेशों में आनन्द से भरपूर है, उसे देख तो तुझे अपने आनन्द का अपूर्व अनुभव हो। अपना आनन्द अपने में ही है—ऐसा जानकर हे जीव! तू आनन्दित हो... आत्मा के प्रति उल्लसित हो! [-पूज्य गुरुदेव]

दशलक्षणी धर्म अर्थात् पर्यूषण पर्व

भाद्रपद शुक्ला ५ गुरुवार ता० २९-८-५७ से भाद्रपद शुक्ला १४ शनिवार ता० ७-९-५७ तक दस दिन सोनगढ़ में दसलक्षणी धर्म अर्थात् पर्यूषण के रूप में मनाये जायेंगे। इन दिनों के दरमियान उत्तम क्षमादि धर्मों पर पूज्य गुरुदेव के मुख्य प्रवचन होंगे।

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	जैन बालपोथी	।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समयसार पद्यानुवाद	।)
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
आत्मावलोकन	१)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५- ६-७-८-१० वर्ष	३ ।।।)
द्वितीय भाग	॥-)		

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७,, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने
वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।